9

भगवान महावीर : त्रिलोकगुरु

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदौ ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।

गुरु की प्रतिमा या आकृति अर्थात् देह ध्यान का आलंबन है । गुरु के चरणकमल अर्थात् पैर पूजा का आलंबन है । गुरु का वाक्य या आदेश य शब्द मंत्र का मूल है या श्रेष्ठ मंत्र है और इन तीनों (ध्यान, पूजा व मंत्र से प्राप्त गुरुकृपा - आशीर्वाद मोक्ष का परम कारण है ।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु का जितना माहात्म्य है इतन माहात्म्य शायद किसी भी पाश्चात्य परंपरा में आजतक विदित नहीं हुआ । भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में मुख्य तीन तत्त्व हैं । देव, गुरु व धर्म देव और गुरु एक जीवित व्यक्ति स्वरूप है । जबकि धर्म एक गुण स्वरूप भावात्मक है । देव और गुरु में मूलतः यही अंतर है कि देव शुरु में गु स्वरूप ही होते हैं । बाद में वे देव / देवाधिदेव परमात्म स्वरूप प्राप्त कर हैं । यही परमात्म स्वरूप अपना परमध्येय होता है । उनकी और धर्म भावात्मक स्वरूप की पहचान हमें गुरु ही कराते हैं । अतएव गुरु क माहात्म्य बताते हुए कबीरजी ने कहा है कि --

गुरु गोविंद दोनों खड़े, किनको लागू पाय ।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दीयो बताय ।।

गुरु ने अभी पूर्ण रूप से परमात्म स्वरूप प्राप्त नहीं किया है कि परमात्म स्वरूप की प्राप्ति के सही मार्ग पर उन्होंने प्रस्थान कर दिया है उसी सही मार्ग की पहचान व अनुभवज्ञान प्रत्येक साधक के लिये मार्गदर्श हो पाता है और उसी मार्गदर्शक के बिना परमपद की प्राप्ति आत्मसाक्षात्कार का अनुभव प्राप्त होने की कोई संभावना नहीं है । अत भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु की अत्यावश्यकता महसूस की गई है

उनके बारे में एक जगह कहा है कि --

गुरु दीवो, गुरु देवता, गुरु विण घोर अंधार ।
जे गुरुओथी वेगला रडवड्या संसार ।।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिओं ने गुरु का इतना माहात्म्य निष्कारण न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया है । वे बहुत ज्ञानी थे और साथ-साथ काफी अनुभव ज्ञान भी उनको था । उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया था वह केवल गुरुओं की कृपा व आशीर्वाद से ही प्राप्त किया था और जिन्होंने गुरुओं के आशीर्वाद प्राप्त नहीं किये वे समर्थ व विद्वान होते हुए भी संसार में भटक गये हैं । ऐसा उन्होंने देखा है, अनुभव किया है । अतः उन्होंने गुरुओं का जो माहात्म्य बताया है वह सत्य है और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी वह उचित है ।

प्रत्येक सजीव प्राणी चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, सभी में एक प्रकार की शक्ति होती है जिसे आध्यात्मिक परिभाषा में आत्मशक्ति कहा जाता है । जबकि आधुनिक विज्ञान की परिभाषा में उसे जैविक विद्युद्‌चुंबकीयशक्ति कहा जाय । उस सजीव प्राणी की विद्युद्‌चुंबकीयशक्ति की तीव्रता का आधार आत्मा के विकास पर है । जितना आत्म विकास ज्यादा होगा उतनी शक्ति का प्रादुर्भाव ज्यादा होगा । यहाँ विकास का मतलब आध्यात्मिक विकास लेना चाहिये ।

" *न्यू सायन्टिस्ट* " नामक विज्ञान सामयिक में निश्चित प्रयोगों के बयान प्रकाशित हुये हैं । उसके अनुसार मनुष्य में भी ऐसा मॅग्नेटिक कंपास या चुंबकीय होकायंत्र है अर्थात् हम भी अज्ञात रूप में किसी भी व्यक्ति या चीज के विद्युद्‌चुंबकीयप्रभाव में आ सकते हैं ।

जिन्होंने विज्ञान का थोड़ा सा भी अध्ययन किया हो उसे मालुम होगा कि लोहचुंबक के इर्दगिर्द उसका अपना चुंबकीय क्षेत्र होता है । और उसे चुंबकीय रेखाओं के द्वारा बताया जाता है । यद्यपि यह चुंबकीय क्षेत्र अदृश्य होने पर भी यदि एक कागज पर एक लोहचुंबक रखकर उसके आसपास में लोह का चूर्ण बहुत ही अल्प प्रमाण में फैला दिया जाय व बाद में अंगुली से ठपकार ने पर वही लोहचूर्ण अपने आप ही चुंबकीय क्षेत्र में चुंबकीय रेखाओं के रूप में परिवर्तित हो जायेगा । इसी चुंबकीय क्षेत्र में यदि किसी लोह का टुकड़ा आ जाय तो यही लोहचुंबक उसको खींचता है, आकर्षित करता है । उसके चुंबकीय क्षेत्र में बार बार परिवर्तन करने पर विद्युत् प्रवाह उत्पन्न होता है और इसी विद्युत् प्रवाह को धातु के तार में से प्रसारित करने पर उसमें भी चुंबकत्व उत्पन्न होता है । इस प्रकार विद्युत् शक्ति व चुंबकीय शक्ति दोनों मिलकर विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति पैदा होती है । वैसी ही बल्कि उससे भी ज्यादा सूक्ष्म व शक्तिशाली विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सजीव प्राणी में होती है । स्थूल विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति के सभी नियम सूक्ष्म विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति को लागू होते हैं । जैसे एक चुंबक को दूसरे चुंबक के चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाय तो उसके समान ध्रुवों के बीच में अपाकर्षण व असमान ध्रुवों के बीच में आकर्षण होता है अर्थात् एक चुंबक का प्रभाव उसके क्षेत्र में आये हुए दूसरे चुंबक या पदार्थ ऊपर पड़ता है । वैसे ही एक जीव के विचारों का प्रभाव उसके पास आये हुए दूसरे मनुष्य, प्राणी या पदार्थ के ऊपर पड़ता है । प्रत्येक पदार्थ के परिमंडल में भी विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र होता है जिसे आभामंडल कहा जाता है और किर्लियन फोटोग्राफी से उसकी तस्वीर भी ली जा सकती है । अतएव प्राचीन ऋषि-मुनिओं ने कहा है कि --:

चित्रं वटतरोर्मूले, वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं, शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ।।

(आश्चर्य है कि बड़ के पेड़ के नीचे बैठे हुए योगी-मुनिओं में शिष्य वृद्ध हैं और गुरु युवान हैं । इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह है कि गुरु का मौन ही प्रवचन है और उससे शिष्यों के संशय दूर हो जाते हैं ।)

इस प्रकार आध्यात्मिक रूप से विकसित गुरुओं के केवल सानिध्य से ही अनायास शिष्यों का आत्मिक विकास होता है और अचिन्त्य शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है ।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में भिन्न भिन्न संप्रदायों में भिन्न भिन्न पद्धति से गुरु शिष्य को आशीर्वाद देते हैं । यही आशीर्वाद भी एक प्रकार का शक्तिपात ही है । सामान्यतः आशीर्वाद पाने का इच्छुक शिष्य आशीर्वाद देने वाले गुरु के चरणों में लीन होता है, नमस्कार करता है और गुरु के पैर पकडता है, उसी समय गुरु उसके मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं और आशीर्वाद देते हैं । इसी प्रक्रिया के दौरान गुरु के हाथ में से निकलता हुआ विद्युत् प्रवाह शिष्य के मस्तिष्क से होकर उसी शिष्य के हाथ में आता है और उससे गुरु के चरणस्पर्श करने पर गुरु के चरण द्वारा यही विद्युत् प्रवाह गुरु में पुनः प्रविष्ट होता है । इस प्रकार विद्युत् प्रवाह का एक चक्र पूर्ण होने पर गुरु की शक्ति शिष्य में आती है । अन्य परंपरा में गुरु शिष्य के मस्तिष्क को सुंघते है । वहाँ भी ऐसा होता है ।

जैन परंपरा में श्रमण भगवान महावीरस्वामी जैनियों के चौबीसवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर थे और उनके प्रथम शिष्य श्री गौतमस्वामी थे । इन दोनों का गुरु शिष्य के रूप में संबंध प्रसिद्ध है ।यद्यपि उनका मूल नाम इन्द्रभूति था और गौतम उनका गोत्र था तथापि जैसे वर्तमान में बड़े लोग अल्ल - उपगोत्र (surname) से पहचाने जाते है वैसे प्राचीन काल में ऋषि-मुनि गोत्र के नाम से पहचाने जाते थे । अतः जैन परंपरा में वे गणधर श्री गौतमस्वामीजी के नाम से पहचाने जाते थे और वर्तमान में भी इसी नाम से ही उनकी आराधना की जाती है । जैन धर्मग्रंथ कल्पसूत्र के अनुसार जब भगवान महावीरस्वामी की उम्र 42 साल थी और गौतमस्वामी की उम्र 50 साल थी तब दोनों का मिलाप हुआ था । उससे पूर्व श्री गौतमस्वामीजी 14 विद्या के पारगामी विद्वान ब्राह्मण पंडित थे और वे यज्ञ-याग कराते थे । उनके पास 500 ब्राह्मण शिष्यों का परिवार था । जब तक इन्द्रभूति गौतम ने भगवान महावीरस्वामी के दर्शन नहीं किये थे और उनके आध्यात्मिक विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था तब तक वे भगवान महावीर को भी वाद-विवाद में परास्त करके अपनी विजय पताका समग्र विश्व में फैलाने की ख्वाहिश रखते थे । किन्तु जहाँ भगवान महावीरस्वामी विराजमान थे उसी समवसरण के पास आते ही एवं दर्शन होते ही भगवान महावीर को जीतने के उनके अरमान चूरचूर हो गये और स्वयं भगवान महावीर के ध्यान में खो गये और इस प्रकार *" ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः "* पद यथार्थ हो पाया ।

कहा जाता है कि जब तीर्थंकर परमात्मा धर्मोपदेश देते हैं तब बारह बारह योजन दूर से मनुष्य व पशु-पक्षी उनका धर्मोपदेश सुनने को आते हैं अर्थात् उनका विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र बारह योजन तक फैला हुआ होता है ।

वर्तमानयुग में शारीरिक रोग को दूर करने के लिये जैसे एक्यूपंक्चर, एक्युप्रेशर, रंगचिकित्सा पद्धति का उपयोग होता है वैसे ही चुंबकीय पद्धति का भी उपयोग होता है । यही बात त्रिलोकगुरु भगवान महावीरस्वामी की केवली अवस्था के वर्णन से फलित होती है । उनका जैविक विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र इतना शक्ति संपन्न था कि वे जहाँ जहाँ विहार करते वहाँ वहाँ उसी क्षेत्र में विहार के दौरान सभी लोगों के रोग इत्यादि दूर हो जाते थे और विहार के बाद भी छः माह तक कोई रोग नहीं होते थे । किसीको आपस में वैरभाव भी नहीं रहता था और उनके प्रभाव से अतिवृष्टि या अनावृष्टि भी नहीं होती थी । मानों उन्होंने इन सब ऊपर हिप्नोटिजम-मेस्मेरिझम किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हो !

वास्तव में तीर्थंकरों के जीवन के ये सब अतिशय / विशेष परिस्थितियाँ कोई चमत्कार व जादू-टोना नहीं था किन्तु उनकी आत्मा से दूर हुए कर्म के कारण प्रादुर्भाव हुयी आत्मशक्ति या विद्युद्चुंबकीय शक्ति का प्रभाव था ऐसा निकट के भविष्य में यदि कोई विज्ञानी द्वारा सिद्ध हो तो आश्चर्य की बात नहीं होगी । इन्द्रभूति गौतम को भगवान महावीरस्वामी के पास से आत्मा के अस्तित्व के बारे में अपनी अमूर्त अरूपी शंका का समाधान प्राप्त होते ही उन्होंने भगवान माहवीरस्वामी को अपने गुरु को रूप में स्वीकार किया और अपना संपूर्ण जीवन गुरुचरण में समर्पित करके *" पूजामूलं गुरोः पदं "* पद को चरितार्थ किया और जब श्रमण भगवान महावीरस्वामी इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण पंडितों को दीक्षा देते हैं उसी समय भगवान स्वयं इन्द्र के हाथ में रखे हुए रत्नजड़ित सुवर्ण थाल में से वास चूर्ण लेकर सभी गणधरों के मस्तिष्क पर डालकर आशीर्वाद देते हैं । उसी आशीर्वाद द्वारा अपने केवलज्ञान स्वरूप प्रकाश का अंश शिष्यों में संक्रमित करते हैं । उससे श्रमण भगवान महावीरस्वामी द्वारा दिये गये केवल तीन पद (1) उप्पन्ने इ वा, (2) विगमे इ वा, (3) धुवे इ वा (जिनको जैन परिभाषा में त्रिपदी कही जाती है) के आधार पर संपूर्ण द्वादशांगी व चौदह पूर्वों जैसे महान धर्मग्रंथों की रचना करते हैं । इस प्रकार गुरु के शब्द स्वरूप त्रिपदी उनके लिये मंत्र स्वरूप होती है और ऐसे मंत्रमूलं *" गुरोर्वाक्यं पद "* चरितार्त होता है ।

दीक्षा के बाद प्रायः 30 साल तक उनके प्रथम शिष्य श्री गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान महावीरस्वामी की सेवा शुश्रुषा, भक्ति-वैयावच्च की और उनके प्रभाव से श्री गौतमस्वामी को विशिष्ट लब्धियाँ / शक्तियाँ प्राप्त हुयीं । जिसके कारण उनके नाम के आगे अनंतलब्धिनिधान ऐसा सार्थक विशेषण रखा जाता है । तथापि उनको केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है । उसका कारण केवल यही था कि उनको भगवान महावीर के प्रति अनन्य राग था । उसको दूर करने के लिये भगवान महावीर अपने निर्वाण समय की रात को इन्द्रभूति गौतम को पास में आये हुये गाँव में स्थित देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने के लिये भेज देते हैं । उसी ब्राह्मण को प्रतिबोध करके वापिस आते हुये इन्द्रभूति गौतम को रास्ते में प्रभु महावीर के निर्वाण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार प्राप्त होते ही वे व्याकुल हो उठते हैं और उसी गुरु की विरह वेदना में से वैराग्य पैदा होता है और श्रमण भगवान महावीरस्वामी से राग के बंधन टूटते ही उनको केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । इस प्रकार मोक्षमूलं गुरोः कृपा पद भी श्री गौतमस्वामी के जीवन में चरितार्थ होता है ।

इस प्रकार श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी वास्तव में त्रिलोकगुरु - त्रिजगगुरु थे ।

What is soundless, touchless, formless, imperishable, Likewise tasteless, constant, odourless, Without beginning, without end, higher than the great, stable — By discerning that, one is liberated from the mouth of death. *Kathopnishad – 3.15*

Knowledge, which comes from such an experience, is called 'absolute knowledge'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org